SHODHPATRA: INTERNATIONAL JOURNAL OF SCIENCE AND HUMANITIES
E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 3, Issue- 5 | May 2026

अधराजण की हरियाणवी सांग-शैली रागणियाँ: पिंगल शास्त्र एवं लोक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (रागणी 24–30 के संदर्भ में)

Anand Kumar Ashodhiya
Independent Researcher and Former Warrant Officer, Indian Air Force
शाहपुर तुर्क, जिला सोनीपत, हरियाणा – 131001

सारांश

प्रस्तुत शोध हरियाणवी सांग-परंपरा में अधराजण (रसकपूर) केंद्रित रागनियों 24–30 का पिंगल-शास्त्रीय तथा लोक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में समग्र विश्लेषण करता है। इसका उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि ये रागनियाँ केवल प्रेम-कथा नहीं, बल्कि भावात्मक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तरों पर बहुस्तरीय आख्यान का निर्माण करती हैं। रागनियों का कथात्मक प्रवाह कैद, विरह, आत्म संघर्ष, नैतिक प्रतिरोध और अंततः मृत्यु के माध्यम से एक क्रमिक भाव-यात्रा प्रस्तुत करता है, जो नारी-अस्तित्व के गहन आयामों को उद्घाटित करता है। रसकपूर का चरित्र एक ऐसी स्त्री के रूप में उभरता है, जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सत्य, प्रेम और आत्मगौरव के प्रति अडिग रहती है। छंदात्मक दृष्टि से "4+6+8+10" मात्रा-विन्यास का सतत प्रयोग एक सुसंगठित अनुशासन को दर्शाता है, जो भावों की क्रमिक तीव्रता को आधार प्रदान करता है। ध्रुवपद, तुकांत-विन्यास और ध्वन्यात्मक पुनरावृत्ति काव्य-सौंदर्य के साथ-साथ सांग-परंपरा की मौखिकता और सहभागिता को भी सुदृढ़ करते हैं। सांस्कृतिक स्तर पर धार्मिक समन्वय, गुरु-परंपरा और लोकस्मृति के तत्त्व विशेष रूप से उभरते हैं। रागनी 30 में मृत्यु का प्रसंग इतिहास और मिथक के मध्य सेतु का निर्माण करता है, जहाँ व्यक्तिगत त्रासदी सांस्कृतिक प्रतीक में रूपांतरित हो जाती है। इस प्रकार, यह अध्ययन सिद्ध करता है कि हरियाणवी रागनियाँ भारतीय साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं तथा नारी-विमर्श, उपेक्षित वर्ग-अध्ययन और सांस्कृतिक चिंतन के लिए व्यापक संभावनाएँ प्रस्तुत करती हैं।

मुख्य शब्द: हरियाणवी सांग-परंपरा; अधराजण (रसकपूर); रागनी काव्य; पिंगल-शास्त्र; लोक-सांस्कृतिक विमर्श; नारी अस्मिता; दरबारी राजनीति; विरह; मौखिक परंपरा; लोकस्मृति

अध्ययन की पृष्ठभूमि एवं संदर्भ

भारतीय लोकसाहित्य की समृद्ध परंपरा में हरियाणवी सांग-शैली एक सशक्त अभिव्यक्ति-माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित रही है, जिसमें लोकजीवन, इतिहास, सामाजिक संरचनाएँ और सांस्कृतिक मूल्य सजीव रूप में अभिव्यक्त होते हैं। सांग केवल नाट्य-विधा नहीं, बल्कि गीत, संवाद और अभिनय का समन्वित रूप है, जिसके केंद्र में रागनी-काव्य स्थित है। अपनी लयात्मकता, छंदीय अनुशासन और भावात्मक तीव्रता के कारण रागनी लोक मानस में गहराई से प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत अध्ययन अधराजण (रसकपूर) की कथा पर आधारित रागनियों 24–30 का विश्लेषण करता है, जो प्रेमकथा के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विमर्शों को भी

*Corresponding Author Email: ashodhiya68@gmail.com
Published: 13 May 2026
DOI: https://doi.org/10.70558/SPIJSH.2026.v3.i5.45731
Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0).

अभिव्यक्त करती हैं।

रसकपूर की कथा जयपुर राज्य के ऐतिहासिक संदर्भों से संबद्ध है, जहाँ एक राज नर्तकी का उन्नयन सामंती संरचना, जातिगत पदानुक्रम और स्त्री की सामाजिक स्वीकृति से जुड़े प्रश्नों को उजागर करता है। इन रागनियों में कैद, आत्म संघर्ष और त्रासद परिणति के माध्यम से सत्ता, षड्यंत्र और न्याय के जटिल संबंध उद्घाटित होते हैं।

पिंगल-शास्त्र इस अध्ययन का प्रमुख सैद्धांतिक आधार है। "4+6+8+10" मात्रा-विन्यास तथा टेक और तुकांत की पुनरावृत्ति यह प्रमाणित करती है कि लोककाव्य भी सुव्यवस्थित छंद-व्यवस्था का पालन करता है। इससे लोक और शास्त्र के अंतर्संबंध का सुदृढ़ संकेत मिलता है।

सांस्कृतिक स्तर पर, इन रागनियों में धार्मिक समन्वय, गुरु-परंपरा और प्रेम की आध्यात्मिक व्याख्या के तत्त्व विद्यमान हैं। साथ ही, रसकपूर का चरित्र नारी अस्मिता, आत्मसम्मान और नैतिक दृढ़ता का प्रतीक बनकर उभरता है, जबकि राजा का अंतर्द्वंद्व सत्ता की मानवीय सीमाओं को रेखांकित करता है।

यह अध्ययन पूर्ववर्ती अनुसंधानों (आशोधिया, 2026a; 2026b; 2026c) का विस्तार करते हुए हरियाणवी रागनी-परंपरा को एक गंभीर और बहुआयामी अकादमिक अध्ययन-विषय के रूप में स्थापित करने का प्रयास करता है।

साहित्य समीक्षा

भारतीय लोकसाहित्य, विशेषतः उत्तर भारतीय सांग-परंपरा पर किए गए पूर्ववर्ती अध्ययनों से यह तथ्य स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होता है कि लोककाव्य केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, अपितु वह सामाजिक संरचनाओं, ऐतिहासिक स्मृतियों तथा सामूहिक चेतना का एक जीवंत और सशक्त दस्तावेज़ भी है। रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन में लोकधारा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए यह स्थापित किया कि साहित्य का वास्तविक स्वरूप जनजीवन में निहित होता है। उनके अनुसार, लोकाभिव्यक्तियाँ समाज के यथार्थ को अधिक स्वाभाविक, निर्भीक और प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करती हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में हरियाणवी सांग-शैली की रागनियाँ, विशेषतः अधराजण की कथा, उस सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करती हैं, जिसमें प्रेम, सत्ता और षड्यंत्र का अंतर्संबंध स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

लोकसाहित्य के सांस्कृतिक अध्ययन में हजारी प्रसाद द्विवेदी का योगदान भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने भारतीय परंपरा में लोक और शास्त्र के सहअस्तित्व को रेखांकित करते हुए यह प्रतिपादित किया कि लोकधारा शास्त्रीयता की विरोधी नहीं, बल्कि उसकी पूरक है। अधराजण की रागनियों में पिंगल-शास्त्र के छंदीय अनुशासन और लोकभाषा की सहज अभिव्यक्ति का जो समन्वय दृष्टिगोचर होता है, वह इसी विचारधारा की पुष्टि करता है। यह तथ्य इंगित करता है कि हरियाणवी रागनी-काव्य में शास्त्रीय छंद-विधान और लोकानुभव का संतुलित तथा सुसंगठित संगम विद्यमान है, जो इसे विशिष्टता प्रदान करता है।

हरियाणवी सांग-परंपरा पर केंद्रित अध्ययनों में महासिंह पूनिया तथा रघुवीर सिंह मथाना जैसे शोधकर्ताओं का योगदान उल्लेखनीय है, जिन्होंने सांग को एक लोकनाट्य-परंपरा के रूप में विश्लेषित करते हुए उसकी सामाजिक भूमिका, संरचना और प्रस्तुति-विधान पर प्रकाश डाला है। उनके अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि सांग केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं है, अपितु सामाजिक शिक्षा, ऐतिहासिक पुनर्स्मरण और सामूहिक संवाद का एक प्रभावी मंच भी है। अधराजण की रागनियों में यह विशेषता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है, जहाँ कथात्मक संरचना

के माध्यम से न केवल भावनात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की गई है, बल्कि सत्ता-संरचना, सामाजिक न्याय और नैतिक द्वंद्व जैसे प्रश्नों को भी गंभीरता से उठाया गया है।

नारी-विमर्श के संदर्भ में सिमोन द बोउवार के विचार विशेष रूप से प्रासंगिक हैं, जिन्होंने स्त्री की सामाजिक स्थिति को 'निर्मित' मानते हुए यह प्रतिपादित किया कि स्त्री की पहचान सत्ता-निर्मित संरचनाओं के अंतर्गत गढ़ी जाती है। इस दृष्टिकोण के आलोक में अधराजण (रसकपूर) के चरित्र का विश्लेषण यह दर्शाता है कि वह एक ऐसी स्त्री के रूप में उभरती है, जो दरबारी सत्ता, सामाजिक पूर्वाग्रहों और लैंगिक असमानताओं के बीच अपने अस्तित्व, आत्मसम्मान और सत्य को बनाए रखने के लिए संघर्षरत है। इसी प्रकार, गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक के उपेक्षित वर्ग-विमर्श की दृष्टि से रसकपूर की अभिव्यक्ति को समझा जा सकता है, जो सत्ता के हाशिये पर स्थित होते हुए भी अपनी आवाज़ को स्थापित करने का साहस रखती है।

इतिहास और लोककथा के अंतर्संबंधों के संदर्भ में रोमिला थापर ने यह प्रतिपादित किया है कि लोकस्मृतियाँ इतिहास के वैकल्पिक रूपों का निर्माण करती हैं, जो प्रामाणिक अभिलेखों से भिन्न होते हुए भी सांस्कृतिक सत्य को अभिव्यक्त करती हैं। अधराजण की कथा, विशेषतः रागनी 30 में प्रस्तुत मृत्यु-प्रसंग, इसी प्रकार के मिथकीय रूपांतरण का उदाहरण प्रस्तुत करता है, जहाँ ऐतिहासिक तथ्य और लोक कथात्मक कल्पना परस्पर समन्वित होकर एक स्थायी सांस्कृतिक संरचना का निर्माण करते हैं। यह प्रक्रिया कथा को न केवल स्थायित्व प्रदान करती है, बल्कि उसे लोक मानस में अमरता भी प्रदान करती है।

पिंगल-शास्त्र और छंद-विधान के अध्ययन में पं. विष्णु नारायण भातखंडे तथा पारंपरिक छंद शास्त्रियों के कार्य यह संकेत करते हैं कि भारतीय काव्य-परंपरा में लय, मात्रा और ध्वनि-संरचना का अत्यंत महत्त्व रहा है। हरियाणवी रागनियों में प्रयुक्त "4+6+8+10" मात्रा-विन्यास इस तथ्य का सशक्त प्रमाण है कि लोककाव्य भी एक सुव्यवस्थित और अनुशासित छंदीय ढाँचे का पालन करता है। इस प्रकार, यह निष्कर्ष उस स्थापित धारणा का खंडन करता है, जिसके अनुसार लोकसाहित्य को केवल स्वस्फूर्त और असंरचित अभिव्यक्ति माना जाता है।

समग्रतः उपलब्ध साहित्य यह संकेत करता है कि हरियाणवी सांग-शैली और रागनी-काव्य पर अभी भी गहन, व्यवस्थित और विश्लेषणात्मक अनुसंधान की पर्याप्त आवश्यकता है। यद्यपि लोकसाहित्य, नारी-विमर्श और सांस्कृतिक अध्ययन के क्षेत्र में सुदृढ़ सैद्धांतिक आधार उपलब्ध हैं, तथापि अधराजण जैसी विशिष्ट कथाओं पर केंद्रित अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित रहे हैं। प्रस्तुत अध्ययन इसी शून्य की पूर्ति का प्रयास करता है, जिसमें पिंगल-शास्त्र, लोक-सांस्कृतिक संदर्भों तथा समकालीन सैद्धांतिक दृष्टियों का समन्वित उपयोग करते हुए अधराजण की रागनियों को एक व्यापक साहित्यिक और सांस्कृतिक विमर्श में पुनर्स्थापित किया गया है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध गुणात्मक तथा व्याख्यात्मक प्रकृति का साहित्यिक अध्ययन है, जिसका उद्देश्य हरियाणवी सांग-परंपरा के अंतर्गत अधराजण (रसकपूर) केंद्रित रागनियों 24–30 का पिंगल-शास्त्रीय तथा लोक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में समग्र विश्लेषण करना है। अध्ययन मुख्यतः पाठ-आधारित परीक्षण और सांस्कृतिक व्याख्या पर आधारित है, जिसके अंतर्गत रागनियों के मूल पाठ, कथानक-विन्यास, छंद-संरचना और भाव-प्रवाह का सूक्ष्म परीक्षण किया गया है। इस प्रक्रिया में साहित्यिक समीक्षा, छंदशास्त्रीय परीक्षण तथा सांस्कृतिक विमर्श का समन्वित उपयोग किया गया है, जिससे रचना के विविध आयामों का संतुलित उद्घाटन संभव हो सके।

प्रारंभिक चरण में प्राथमिक स्रोत के रूप में चयनित रागनियों (24–30) के प्रामाणिक पाठ का संकलन एवं सत्यापन किया गया। तत्पश्चात लोकसाहित्य, सांग-परंपरा, पिंगल शास्त्र तथा नारी एवं सांस्कृतिक विमर्श से

संबंधित विद्वानों के ग्रंथों और शोधों का समीक्षात्मक अध्ययन कर एक सैद्धांतिक आधार निर्मित किया गया। छंदीय विश्लेषण के अंतर्गत मात्रा-विन्यास, तुक-व्यवस्था, ध्रुवपद की पुनरावृत्ति तथा ध्वन्यात्मक संरचना का परीक्षण किया गया, जिससे काव्य-शिल्प और भाव-अभिव्यक्ति के अंतर्संबंध स्पष्ट हो सकें।

विषयवस्तु-विश्लेषण के माध्यम से नारी अस्मिता, प्रेम-विरह, सत्ता-संरचना, षड्यंत्र, धार्मिक समन्वय और आत्मगौरव जैसे प्रमुख तत्त्वों की पहचान की गई। साथ ही, ऐतिहासिक-संदर्भात्मक दृष्टि से जयपुर राज्य की सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए रचनाओं का विश्लेषण किया गया। तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में लोक और शास्त्र, इतिहास और मिथक तथा व्यक्तिगत अनुभव और सामूहिक चेतना के अंतर्संबंधों को भी स्पष्ट किया गया।

शोध की विश्वसनीयता सुनिश्चित करने हेतु पाठों का पुनर्पाठ तथा सैद्धांतिक दृष्टियों का सावधानीपूर्वक समन्वय किया गया। इस प्रकार, अपनाई गई पद्धति अध्ययन को सुसंगठित, तार्किक और अकादमिक स्वरूप प्रदान करती है तथा हरियाणवी लोकसाहित्य के गहन अध्ययन हेतु एक प्रभावी आधार प्रस्तुत करती है।

कथात्मक एवं साहित्यिक विश्लेषण:

अधराजण की रागनियाँ 24 से 30 तक एक सुसंगठित और क्रम विकसित कथात्मक प्रवाह का निर्माण करती हैं, जिसमें व्यक्तिगत पीड़ा, सामाजिक अन्याय, राजनीतिक षड्यंत्र तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष क्रमशः विकसित होते हैं। इन रागनियों का सूक्ष्म विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि सांग-परंपरा में कथा और काव्य परस्पर पूरक तत्त्व हैं, जहाँ वृत्तांत भाव भूमि का निर्माण करता है, रागनी उसे संवेदनात्मक तीव्रता प्रदान करती है, तथा व्याख्या उसके अंतर्निहित अर्थ-संरचनाओं का उद्घाटन करती है। इस त्रिस्तरीय संरचना के अंतर्गत रसकपूर (अधराजण) की यात्रा केवल एक प्रेमिका की कथा तक सीमित न रहकर एक व्यापक सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में विकसित होती है।

रागनी 24 में कथानक का आरंभ कैद और अन्याय की स्थिति से होता है, जहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि “बिना सूचना दिए ही, रसकपूर को... बंदी बना लिया गया,” जिससे सत्ता की मनमानी तथा स्त्री के प्रति अविश्वास की संरचना उद्घाटित होती है। इसी संदर्भ में रागनी की पंक्ति—“हो शूरदेव किलेदार तूं दादा मैं पोती, मतना बुझै बात आत्मा रोती”—आत्मीयता और करुण याचना का संयुक्त स्वर प्रस्तुत करती है। “मैं पतिव्रता नार, अडिग रही सत पै” कथन रसकपूर की नैतिक दृढ़ता को रेखांकित करता है, जो आरोपों के बावजूद अपने सत्य पर अविचल रहती है। वृत्तांत में उल्लिखित “भोजन त्याग” इस रागनी में आत्म संयमित प्रतिरोध के रूप में अभिव्यक्त होता है। “मैं पूजे शिवजी राम... मैं पढ़ती रही नमाज” जैसी पंक्तियाँ धार्मिक समन्वय का सशक्त बिंब उपस्थित करती हैं, जो लोक-सांस्कृतिक बहुलता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

रागनी 25 में कथा का विस्तार कैद से बाहर की भटकन में होता है, जहाँ रसकपूर “भेष बदलकर जयपुर की गलियों में” अपने प्रिय की खोज में निकलती है। यह प्रसंग रागनी में अत्यंत मार्मिक रूप में व्यक्त हुआ है—“जयपुर नगरी सारी टोह ली, मैं तो हाण्डू मारी मारी।” यह पंक्ति केवल भौतिक खोज का संकेत नहीं देती, अपितु अस्तित्वगत भटकाव का भी द्योतक है। “पाणी के म्ह प्यासी बाल्टी, जणूं कुंए के म्ह लटकूँ सूँ” रूपक उसकी अधूरी प्यास और गहन असंतोष को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करता है। वृत्तांत में वर्णित “हर मोड़ पर आँखों में प्रश्न” यहाँ एक लयात्मक विलाप में परिणत हो जाता है, जिसमें प्रेम की खोज निरंतर निराशा में परिवर्तित होती दिखाई देती है।

रागनी 26 में कथा पुनः किले के भीतर लौटती है, किन्तु इस बार रसकपूर केवल एक पीड़ित प्रेमिका नहीं, बल्कि एक सजग पर्यवेक्षक के रूप में उभरती है। उसका कथन—“इस जयपुर में अब महाराज की सत्ता नहीं, सामंतों का

कूच है"—राजनीतिक विघटन की ओर संकेत करता है। यही भाव रागनी की पंक्तियों—"सारे शहर में रुक्का पड़ रहया, राजा कै गमी छाई" तथा "राजकोष कति खाली होग्या, हो रही झोझो माई"—में परिलक्षित होता है। यहाँ व्यक्तिगत पीड़ा राज्य की सामूहिक पीड़ा के साथ अंतर संबद्ध हो जाती है। "दूणी ठाकुर फतेहकँवर संग, मिलकै खेल रचाग्या" जैसी पंक्तियाँ षड्यंत्र के स्पष्ट उद्घाटन का कार्य करती हैं, जिससे रागनी एक प्रकार के राजनीतिक दस्तावेज़ का रूप धारण कर लेती है।

रागनी 27 में कथानक संवादात्मक रूप ग्रहण करता है, जहाँ सुम्मन के प्रश्न के उत्तर में रसकपूर अपनी आंतरिक वेदना को व्यक्त करती है। "बहाण मेरा रूस गया भरतार..." रागनी का केंद्रीय टेक बनकर उभरता है। "प्यार मेरा शक तै हार गया" पंक्ति इस रचना की भावात्मक धुरी है, जो यह इंगित करती है कि प्रेम का विघटन बाह्य षड्यंत्रों की अपेक्षा आंतरिक अविश्वास के कारण अधिक हुआ। "वा फतेकँवर... मीठी बाणी... दाग धरगी" में स्त्री-स्त्री संबंधों के अंतर्गत अंतर्निहित प्रतिस्पर्धा और संघर्ष का सूक्ष्म चित्रण है, जो सामाजिक संरचना की जटिलताओं को उद्घाटित करता है। इस रागनी में आत्म कथात्मक स्वर की प्रधानता लोककाव्य को व्यक्तिगत अनुभव की गहराई प्रदान करती है।

रागनी 28 में दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है और कथा राजा जगतसिंह के अंतर्मन की ओर स्थानांतरित हो जाती है। "क्या मैंने भूल की?" जैसे आत्म प्रश्न "अरै रै तूं दे माफी गुनहगार नै" के रूप में व्यक्त होते हैं, जो पश्चाताप और आत्मस्वीकृति के प्रतीक हैं। "तेरे नाम का दिल में काँटा" तथा "बदनसिंह के नां के अज़गर" जैसे बिंब मनोवैज्ञानिक द्वंद्व और षड्यंत्रों के प्रभाव को सजीव रूप में प्रस्तुत करते हैं। यहाँ रागनी सत्ता के मानवी करण का उदाहरण प्रस्तुत करती है, जहाँ राजा एक त्रुटिपूर्ण, दबाव ग्रस्त तथा अंततः पश्चाताप ग्रस्त व्यक्तित्व के रूप में उभरता है।

रागनी 29 में पुनः रसकपूर के अंतर्मन का गहन तम स्तर उद्घाटित होता है। "दुख की घड़ी आन पड़ी" उसका केंद्रीय भाव बनकर उभरता है। "आधे राज की मैं मालिक बणगी... तख़्त में शूल गड़ी" पंक्तियाँ सत्ता और पीड़ा के द्वंद्व को अत्यंत प्रभावी रूप में व्यक्त करती हैं। यहाँ विडंबना यह है कि सर्वोच्च सत्ता प्राप्त करने वाली स्त्री ही सर्वाधिक असहाय स्थिति में उपस्थित है। "दिल तै प्यारा... हाथ खींचग्या" में विरह और परित्याग की तीव्रता का सघन चित्रण है। इस रागनी में व्यक्तिगत दुख एक व्यापक सांस्कृतिक प्रतीक का रूप धारण कर लेता है।

अंततः रागनी 30 कथा की चरम परिणति को अभिव्यक्त करती है, जहाँ मृत्यु और मिलन एक साथ उपस्थित होते हैं। "पकड़ काळजा बैठ गई" जैसे पद शारीरिक एवं मानसिक आघात की तीव्रता को मूर्त रूप देते हैं। "मृतप्राय स्पंदनहीन सी... जीवती लाश" की छवि मृत्यु-पूर्व की मानसिक स्थिति का सजीव चित्रण करती है। "तेरी गैल में सती होऊँगी" तथा "रसकपूर गई कूद महल तै" जैसी पंक्तियाँ प्रेम के चरम समर्पण तथा सांस्कृतिक मिथकीकरण को अभिव्यक्त करती हैं। यहाँ कथा इतिहास की सीमाओं का अतिक्रमण कर लोकस्मृति और मिथकीय संरचना में रूपांतरित हो जाती है।

समग्रतः, रागनी 24–30 का यह विश्लेषण यह प्रतिपादित करता है कि अधराजण की कथा एक बहुआयामी साहित्यिक संरचना है, जिसमें वृत्तांत, काव्य और सांस्कृतिक व्याख्या परस्पर अंतर संबद्ध हैं। इन रागनियों में प्रयुक्त छंद, बिंब और प्रतीक न केवल भाव-अभिव्यक्ति के साधन हैं, अपितु सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ के उद्घाटन के माध्यम भी हैं। इस प्रकार, यह रागनी-श्रृंखला हरियाणवी सांग-परंपरा को एक सशक्त साहित्यिक और सांस्कृतिक दस्तावेज़ के रूप में प्रतिष्ठित करती है, जो नारी अस्मिता, सत्ता-संरचना तथा मानवीय संवेदना के जटिल अंतर्संबंधों को गहनता के साथ अभिव्यक्त करती है।

पिंगल एवं छंदात्मक विश्लेषण

हरियाणवी सांग-शैली की रागनियों में निहित पिंगल-शास्त्रीय संरचना लोक और शास्त्र के अद्भुत समन्वय का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करती है। अधराजण की रागनियाँ 24 से 30 तक का विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि यद्यपि ये रचनाएँ लोकधारा से उद्भूत हैं, तथापि इनमें छंद-शास्त्र के मूलभूत सिद्धांत—मात्रा-संतुलन, यति-विन्यास, तुक-योजना तथा ध्वनि-सौंदर्य—का अत्यंत सुसंगठित एवं सुस्पष्ट प्रयोग परिलक्षित होता है। इन रागनियों में "4+6+8+10" मात्रा-विन्यास की आवृत्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो न केवल लयात्मक अनुशासन को बनाए रखती है, अपितु भाव-प्रवणता के क्रमिक उत्कर्ष को भी सुनिश्चित करती है।

रागनी 24 में "हो शूरदेव किलेदार तूं दादा मैं पोती, मतना बुझै बात आत्मा रोती" जैसी टेक पंक्ति पिंगल की दृष्टि से एक स्थायी लय-खंड का कार्य करती है, जिसमें गुरु और लघु मात्राओं का संतुलित विन्यास करुण भाव की तीव्रता को ध्वन्यात्मक आधार प्रदान करता है। "रोती–ढोती–टोती–सोती–धोती" जैसे तुकांत विन्यास में अनुप्रास और अंत्यानुप्रास का संयुक्त प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है, जो करुण रस की पुनरावृत्ति को श्रव्य स्तर पर गहनता प्रदान करता है। यहाँ यति का स्थान प्रायः मध्य में स्थापित होता है, जिससे कथ्य का भाव-विभाजन स्पष्ट तथा प्रभावकारी बनता है।

रागनी 25 में प्रयुक्त तर्ज "नगरी नगरी द्वारे द्वारे..." के अंतर्गत "जयपुर नगरी सारी टोह ली, मैं तो हाण्डू मारी मारी" पंक्ति में लघु और गुरु मात्राओं की आवृत्ति एक गतिशील लय का सृजन करती है, जो भटकाव की भाव-स्थिति को छंद के स्तर पर मूर्त रूप प्रदान करती है। विशेषतः "पाणी के म्ह प्यासी बाल्टी, जणूं कुँए के म्ह लटकूँ सूँ" में दीर्घ स्वर-प्रयोग तथा आंतरिक तुक की योजना भाव की लटकन और अधूरी प्यास को ध्वन्यात्मक रूप से अभिव्यक्त करती है। यह पिंगल की उस विशेषता का द्योतक है, जिसमें ध्वनि और अर्थ परस्पर एक-दूसरे को सुदृढ़ करते हैं।

रागनी 26 में कथात्मकता और छंदात्मक अनुशासन का संतुलन अधिक सुस्पष्ट रूप में दिखाई देता है। "ले दादा मैं उल्टी आग्यी, मनै अपणा फ़र्ज़ निम्भाया" पंक्ति में दीर्घ और लघु मात्राओं का संतुलित विन्यास एक वीर-नीतिपरक लय का सृजन करता है। तुकांत "निम्भाया–ठाया–माया–छाया–सुणाया–कमाया" में दीर्घ स्वरांत का प्रयोग स्थायित्व और गंभीरता का बोध कराता है, जो राजनीतिक कथ्य की प्रकृति के अनुकूल है। इस रागनी में यति का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित है, जिससे प्रत्येक चरण एक स्वतंत्र विचार-खंड के रूप में उभरता है।

रागनी 27 में छंदात्मक पुनरावृत्ति का अत्यंत प्रभावकारी प्रयोग हुआ है। "बहाण मेरा रूस गया भरतार..." तथा "उनै के गरज मनावण की..." की आवृत्ति ध्वनि-प्रतिध्वनि का ऐसा प्रभाव उत्पन्न करती है, जो करुण रस को तीव्रता प्रदान करता है। पिंगल की दृष्टि से यह पुनरावृत्ति मात्र अलंकारिक प्रयोग न होकर भाव-संप्रेषण का सशक्त माध्यम बन जाती है। "मेरै ला ला झूठे दोष..." जैसी पंक्तियों में लघु-गुरु मात्राओं के तीव्र उतार-चढ़ाव से आंतरिक व्याकुलता का सजीव चित्रण होता है।

रागनी 28, जो राजा जगतसिंह की आत्मग्लानि का प्रतिनिधित्व करती है, में "अरै रै तूं दे माफी गुनहगार नै..." टेक के रूप में एक प्रायश्चित्तपरक लय का निर्माण करती है। यहाँ दीर्घ मात्राओं की प्रधानता एक धीमी एवं बोझिल लय उत्पन्न करती है, जो पश्चाताप की मनोस्थिति के अनुकूल है। "तेरे नाम का दिल में काँटा, चुभै था न्यू तणा तणा" में ध्वन्यात्मक पुनरावृत्ति आंतरिक पीड़ा की प्रतिध्वनि के रूप में कार्य करती है, जिससे छंद और भाव का एकात्म स्थापित होता है।

रागनी 29 में करुण रस की चरम अभिव्यक्ति के साथ छंद के नियंत्रित विचलन का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। "दुःख की घड़ी, आण पड़ी, मेरे दुःख का ना परवार" में अल्पविरामों के माध्यम से यति का सूक्ष्म विभाजन भाव-विखंडन को संरचनात्मक आधार प्रदान करता है। तुकांत "परवार–गार–अम्बार–दिलदार–ताबेदार" में ध्वन्यात्मक एकरूपता के साथ अर्थ गत विविधता विद्यमान है, जो पिंगल की उस क्षमता को प्रमाणित करती है, जिसके माध्यम से एक ही ध्वनि-ढाँचा विविध भावों का वहन कर सकता है।

रागनी 30 में पिंगल का प्रयोग अत्यंत नाटकीयता के साथ अपने चरम बिंदु पर पहुँचता है। "पकड़ काळजा बैठ गई, फेर आवण लगी अंधेरी" में दीर्घ मात्राओं की प्रधानता मृत्यु-बोध की धीमी और गहन लय को साकार करती है। "जीभ अकड़गी, जुबान जकड़गी..." में अनुप्रास तथा ध्वनि-संयोजन शारीरिक जड़ता को श्रव्य रूप प्रदान करते हैं। अंतिम चरण "रसकपूर गई कूद महल तै, ना पल की लाई देरी" में लय का तीव्र संकुचन घटना की आकस्मिकता और निर्णायकता को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करता है।

समग्रतः, रागनियाँ 24 से 30 तक का पिंगल एवं छंदात्मक विश्लेषण यह प्रतिपादित करता है कि लोक-रचना होने के बावजूद इनका छंद-विधान अत्यंत सुसंगठित, अनुशासित और उद्देश्यपरक है। मात्रा-विन्यास, यति-स्थापन, तुक-योजना तथा ध्वनि-अलंकारों का प्रयोग केवल सौंदर्य-वर्धन के लिए नहीं, बल्कि भाव-संप्रेषण के सशक्त उपकरण के रूप में किया गया है। यह रचनाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि हरियाणवी सांग-शैली की रागनियाँ पिंगल शास्त्र की एक जीवंत प्रयोग-भूमि हैं, जहाँ लोकानुभव और छंद-शास्त्र परस्पर विलीन होकर एक विशिष्ट काव्यात्मक संवेदना का सृजन करते हैं।

चर्चा

अधराजण की रागनियाँ (24–30) हरियाणवी सांग-परंपरा में केवल कथात्मक विस्तार नहीं, बल्कि भाव, शिल्प और सामाजिक यथार्थ के बहुस्तरीय समन्वय का सुसंगठित उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। इनमें कैद, विरह, आत्मस्वीकृति, राजनीतिक विडम्बना और मृत्यु जैसे अनुभव क्रमिक भाव-यात्रा के रूप में विन्यस्त होकर लोककाव्य को व्यापक अर्थवत्ता प्रदान करते हैं।

रागनी 24 से 27 तक का खंड नारी की आत्म-अभिव्यक्ति का प्रमुख क्षेत्र निर्मित करता है, जहाँ रसकपूर एक सक्रिय चेतना के रूप में उभरती है। उसका भोजन-त्याग सांकेतिक प्रतिरोध का रूप ग्रहण करता है, जो सत्य और आत्मसम्मान की रक्षा का आंतरिक संकल्प व्यक्त करता है। रागनी 25–26 में भेष-विन्यास और नगर-भ्रमण स्त्री की सामाजिक सीमाओं के अतिक्रमण तथा आत्म-सत्य की खोज के रूपक के रूप में उभरते हैं।

रागनी 27 में संवादात्मक विन्यास लोक-आधारित नैतिक न्याय की स्थापना करता है, जबकि रागनी 28 में राजा जगतसिंह का अंतर्द्वंद्व सत्ता के मानवीकरण को उद्घाटित करता है। इससे स्पष्ट होता है कि लोककाव्य आदर्शीकरण के स्थान पर नैतिक जटिलताओं को अभिव्यक्ति देता है।

रागनी 29–30 में भावात्मक उत्कर्ष प्राप्त होता है, जहाँ सत्ता और संवेदना का द्वंद्व तथा मृत्यु का प्रसंग सांस्कृतिक मिथक में रूपांतरित हो जाता है। छंदीय स्तर पर "4+6+8+10" मात्रा-विन्यास, तुकांत पुनरावृत्ति और ध्रुवपद की आवृत्ति भाव-संप्रेषण को सुदृढ़ करती है।

सांस्कृतिक दृष्टि से धार्मिक समन्वय और गुरु-परंपरा की उपस्थिति इस काव्य को बहुलतावादी और आध्यात्मिक आयाम प्रदान करती है। इस प्रकार, यह समुच्चय नारी अस्मिता, सत्ता-संरचना और लोकचेतना के अंतर्संबंधों को समेकित रूप में उद्घाटित करता है।

निष्कर्ष

अधराजण की रागनियाँ 24 से 30 तक का समुच्चय हरियाणवी सांग-शैली की काव्यात्मक, सांस्कृतिक तथा वैचारिक सामर्थ्य का सघन रूप प्रस्तुत करता है। इन रचनाओं में व्यक्तिगत प्रेम-कथा के माध्यम से व्यापक सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक विमर्श का निर्माण हुआ है, जिससे लोकसाहित्य जन-चेतना के सशक्त दस्तावेज़ के रूप में प्रतिष्ठित होता है। रसकपूर की कैद, आत्मस्वीकृति, भेष-विन्यास द्वारा सत्य की खोज तथा अंततः विरह और मृत्यु तक की यात्रा—इन सभी चरणों में नारी अस्मिता, सत्ता-संरचना और मानवीय संवेदना के जटिल अंतर्संबंध स्पष्ट रूप से उभरते हैं।

छंदशास्त्रीय दृष्टि से “4+6+8+10” मात्रा-विन्यास, तुकांत की ध्वन्यात्मकता तथा टेक की पुनरावृत्ति न केवल काव्य के अनुशासन को पुष्ट करती है, बल्कि भावों की तीव्रता को भी क्रमबद्ध रूप में सशक्त बनाती है। इस प्रकार, लय और छंद यहाँ भाव-अनुभूति के प्रभावी संवाहक सिद्ध होते हैं।

सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में, रसकपूर का चरित्र एक सजग, आत्म संवेदी और नैतिक रूप से दृढ़ स्त्री का प्रतीक बनकर उभरता है, जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सत्य और आत्मसम्मान का परित्याग नहीं करती। साथ ही, धार्मिक समरसता और गुरु-परंपरा के संकेत इस काव्य को बहुलतावादी चेतना प्रदान करते हैं।

अतः यह स्पष्ट होता है कि हरियाणवी सांग-शैली एक समृद्ध साहित्यिक परंपरा है, जो सामाजिक न्याय, नारी-विमर्श और आध्यात्मिक चिंतन को समेकित करते हुए भविष्य के अनुसंधान के लिए व्यापक संभावनाएँ उद्घाटित करती है।

संदर्भ सूची

1. आशोधिया, आनन्द कुमार. (2025). *अधराजण: हरियाणवी लोक रागनियों का संकलन—रागनी सांग शैली में एक लोककथा (साहित्यिक विश्लेषण सहित, द्वितीय संस्करण)*। अविकावनी प्रकाशन।
2. आशोधिया, आनन्द कुमार. (2026a). *हीर–राँझा की हरियाणवी रागनी परंपरा: पिंगल शास्त्र के आलोक में एक सांस्कृतिक विश्लेषण (रागनी 1–7)*। द अकादमिक—अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, 4(3), 2261–2265। https://doi.org/10.5281/zenodo.19542794
3. आशोधिया, आनन्द कुमार. (2026b). *हीर–राँझा की हरियाणवी रागनी परंपरा: पिंगल शास्त्र के आलोक में एक सांस्कृतिक विश्लेषण (रागनी 8–16)*। शोधपत्र: अंतरराष्ट्रीय विज्ञान एवं मानविकी पत्रिका, 3(4), 154–159। https://doi.org/10.70558/SPIJSH.2026.v3.i4.45689
4. आशोधिया, आनन्द कुमार. (2026c). *हीर–राँझा की हरियाणवी रागनी परंपरा: पिंगल शास्त्र के आलोक में एक सांस्कृतिक विश्लेषण (रागनी 23–28)*। रिसर्च रिव्यू अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी पत्रिका, 11(4), 14–20। https://doi.org/10.31305/RRIJM.2026.V11.N04.002
5. आचार्य, हजारी प्रसाद. (1974). *पिंगल शास्त्र: छंद और अलंकार का अध्ययन*। वाराणसी: चौखम्बा विद्या भवन।
6. अग्रवाल, वासुदेव शरण. (1965). *भारतीय कला और संस्कृति: उद्गम एवं विकास का अध्ययन*। नई दिल्ली: साहित्य अकादमी।
7. बार्थवाल, पी. डी. (1954). *हिन्दी काव्य में लोकतत्त्व*। इलाहाबाद: हिन्दी साहित्य सम्मेलन।
8. चतुर्वेदी, रामस्वरूप. (1983). *लोक साहित्य के सिद्धांत और प्रयोग*। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

9. डांगी, ओ. पी. (2001). *हरियाणा का लोक साहित्य और संस्कृति*। रोहतकः हरियाणा साहित्य अकादमी।
10. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. (1978). *हिन्दी साहित्य की भूमिका*। नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन।
11. ग्रीयर्सन, जॉर्ज ए. (1916). *भारत का भाषायी सर्वेक्षण (खण्ड 9)*। कलकत्ताः भारत सरकार प्रेस।
12. कुमार, सुरेश. (2010). *हरियाणवी लोकगीत और उनका सामाजिक संदर्भ*। चण्डीगढ़ः पंजाब विश्वविद्यालय प्रेस।
13. मिश्र, विद्यानिवास. (1999). *छंद शास्त्र और हिन्दी काव्य परंपरा*। दिल्लीः वाणी प्रकाशन।
14. नारंग, गोपीचन्द. (2002). *संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र*। नई दिल्लीः साहित्य अकादमी।
15. पांडेय, रामकुमार. (1985). *लोकधारा और हिन्दी साहित्य*। इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन।
16. रामानुजन, ए. के. (1999). *भारत की लोककथाएँः बाईस भाषाओं से चयनित मौखिक कथाएँ*। नई दिल्लीः पेंगुइन।
17. शर्मा, रामशरण. (2005). *प्रारम्भिक मध्यकालीन भारतीय समाजः सामंतवाद का अध्ययन*। नई दिल्लीः ओरिएण्ट ब्लैकस्वान।
18. शर्मा, कृष्ण. (2012). *हरियाणा की लोकनाट्य परंपराः सांग और रागनी*। हिसारः हरियाणा ग्रंथ अकादमी।
19. सिंह, नरेन्द्र. (2008). *हिन्दी लोक साहित्यः इतिहास और समीक्षा*। दिल्लीः ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस।
20. स्नेल, रूपर्ट. (2010). *हिन्दी की शास्त्रीय परंपराः ब्रजभाषा पाठक*। लंदनः एसओएएस।
21. त्रिवेदी, रामकुमार. (1998). *भारतीय काव्यशास्त्र के मूल सिद्धांत*। जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
22. यादव, के. सी. (1994). *हरियाणा का इतिहास*। नई दिल्लीः मनोहर प्रकाशन।
23. जेलियट, एलेनोर. (2001). *अस्पृश्य से दलित तकः आंबेडकर आंदोलन पर निबंध*। नई दिल्लीः मनोहर प्रकाशन।